भगवान महावीर का समन्वयवाद और विश्व-कल्याण

(डॉ. श्रीमती कोकिला भारतीय)

मानव जीवन का परम लक्ष्य है - निर्वाण पाना । मनुष्य क्या करे कि उसे निर्वाण प्राप्त हो - आत्म स्वरूप का ज्ञान हो ? इस प्रश्न का उत्तर भगवान महावीर ने दिया – "आत्मा पर अनुशासन । आत्मा पर विजय पाने वाला मनजीत ही विश्वजीत होता है - समस्त दुःखों से मुक्त होता है । दुःखों से मुक्ति के लिए, जीवन में सार्थक शांति के लिए, आत्म प्रशस्ति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए तथा विश्व कल्याण, दूसरे शब्दों में 'स्व' और 'पर' के कल्याण के लिए समन्वय भाव आवश्यक है । भगवान महावीर समन्वय की जीती जागती मशाल थे । हर क्षेत्र में समन्वय - चाहे वह विभिन्न धर्मों में हो, चाहे आचरण में हो, चाहे व्यवहार में हो चाहे विचार में । उन्होने आंतरिक और बाह्य, व्यक्तिगत और सामाजिक प्रत्येक कोण से समन्वय का समीकरण किया तथा प्रत्येक समस्या का सम्यक् समाधान प्रस्तुत कर मानवता को कल्याण और शांति की राह दिखाई ।

अन्तर्जगत में समन्वय-क्रांति का शंखनाद कर, भगवान महावीर स्वयं कामनाओं से लड़े, विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त की, हिंसा को पराजित किया, असत्य को पराभूत किया तथा जात्यभिमान, कर्माभिमान, आडम्बर, विषमता, लोभ, मोह आदि को पीछे धकेल कर निर्वाण के भागी बने, भगवत्ता के महान् पद पर प्रतिष्ठित हुए ।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना उनमें कूट कर भरी थी । हर प्राणी सुख चाहता है और इस हेतु वह प्रयत्न भी करता हैं, पर अधिकांश जन दुःखी ही देखे जाते हैं । वे दुःखी क्यों है ? उन्हें सुख क्यों नहीं मिलता, क्या सुखी बनने के लिए दूसरों को दुःखी बनाना आवश्यक है ? यदि नहीं तो सभी को सुखी बनाकर कैसे सुख पाया जा सकता है - यह, उनके मन की व्यथा थी तथा सर्व कल्याण और स्व कल्याण के मार्ग को ढूंढना उनके जीवन का लक्ष्य । इस प्रक्रिया में उन्हें १२ वर्ष लगे और जो पाया वह दिव्य से दिव्य था, गहन से गहन था पर स्फटिक की तरह केवल ज्ञान और ज्ञान था । जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा । केवल ज्ञान के उस अलौकिक प्रकाश ने विश्व की हर समस्या का समाधान प्रस्तुत किया ।

महावीर के आविर्भाव के समय की तत्कालीन व्यवस्था में जन्मना जाति का सिद्धान्त व्याप्त था अतः समाज में विषमता का बोल बाला था । सांप्रदायिकता का आवरण धर्म पर छा रहा था । एक ओर हिंसा का बोल बाला था तो दूसरी ओर वैभव, विलास और व्यभिचार का तांडव नृत्य । ऐसे में महावीर का समता का सिद्धान्त - कोई ऊँचा नहीं - कोई नीचा नहीं - सभी बराबर का प्रतिपादन अभूतपूर्व क्रान्ति लाया । प्राणीमात्र का कल्याण ही उनका लक्ष्य था और यही उनका धर्म । उन्होंने मानसिक स्वतंत्रता और साहसिक आवश्यकता का महत्त्व समझाया तथा प्रत्येक क्षेत्र में समन्वयवाद के जरिये समस्त प्राणियों को सुख, शांति समृद्धि व संतोष का संदेश दिया ।

सर्वधर्मसमन्वय –

'वत्थु सभावो धम्मो' – वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है । जिस प्रकार जल का स्वभाव शीतलता, अग्नि का उष्णता, शक्कर का स्वभाव मीठापन, नमक का स्वभाव खारापन है उसी तरह आत्मा का स्वभाव ज्ञान, दर्शन व चारित्रमय है - सदाचार-मय है - सद्चित्त एवं आनंदमय है । प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव में रमण करे तो यही धर्म है और यही आत्मा का स्वाभाविक और निजी गुण भी । दूसरे शब्दों में आत्मा की मूल प्रवृत्तियों के अनुरूप चलना ही धर्म है ।

धम्मो मंगल मुक्किटठं, अहिंसा संजमो तवो,
देवा वित्तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

(दशवैकालिक सूत्र)

अर्थात् जो उत्कृष्ट मंगलमय है, वही धर्म है - दूसरे शब्दों में जो प्राणीमात्र के लिए सुख शांतिकारी है, मंगलकारी है - वही धर्म है । अहिंसा, संयम व तप की आराधना से ही मानव मात्र का मंगल होता है तथा आत्मा का कल्याण होता है । ऐसे धर्म को धारण करने वाले को देवता भी नमस्कार करते हैं ।

उन्होंने किसी धर्म विशेष का गुण गान नहीं किया । उनका तो बस एक ही लक्ष्य था - प्राणीमात्र को सुखी देखना । जिस धर्म में सभी प्राणियों का मंगल निहित है वही सच्चा धर्म है ।

"जाव दियाइं कल्लाणाइं, सग्गे य मगुअलोगेय ।
आव हदि ताण सव्वाणि, मोक्खं च वर धम्मो ।'

(भगवती सूत्र)

अर्थात् स्वर्ग और मृत्युलोक में जितने भी कल्याण हैं उन सबका प्रदाता धर्म ही है । मनुष्य का कल्याण धर्म पालन में है - हाँ धर्म की परख आवश्यक है - हिंसक, रूढ़िवादी व कृत्रिमता पूर्ण धर्म कल्याण कारक नहीं हो सकता । सर्वोच्च और सच्चा धर्म वही है जो सब प्राणियों के लिए मंगलकारी है ।

भगवान महावीर के सर्व धर्म समन्वयवादी विचारों ने न सिर्फ तत्कालीन समाज को सन्मार्ग दिया वरन् आज जब संप्रदायों के झगड़े, हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई आदि धर्मानुयायियों के झगड़े, संगठनों के - पंथो और विचारों के झगड़े न सिर्फ भारत को वरन् सम्पूर्ण विश्व

खोकर निज सम्मान को, करता कार्य कठोर ।
जयन्तसेन जगे नहीं, उस का अनुभव जोर ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अशान्ति और आतंक, संघर्ष और तनाव की ओर ले जा रहे हैं - महावीर के ये सर्व धर्म समन्वयवादी विचार सर्व मंगल मांगल्यम् सर्व कल्याण कारणम् है - प्रत्येक देश, समाज, जाति, मानव एवं प्राणीमात्र के लिए शांतिदीप की तरह है ।

सामाजिक समन्वयवाद –

समाज से विषमता का जहर मिटाने के लिए, शोषण के दावानल को समाप्त करने के लिये तथा विश्वबन्धुत्व व विश्वशांति की प्रतिष्ठा के लिए भगवान महावीर ने सामाजिक व्यवहार का सम्यक्करण किया - समता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । समता - अर्थात् सब के प्रति समान व्यवहार, समान भाव । अनादि काल से मानव इस संसार में जन्म ले रहा है । कोई ऐसा जीव नहीं जो उसका माता-पिता, पति-पत्नि, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन आदि न रहा हो । फिर वह किससे मित्रता करे व किससे घृणा ? किसे ऊँचा माने और किसे नीचा ? उसका आवागमन दीर्घकालिक है अतः तात्कालिक दृष्टि से उसे नहीं सोचना चाहिये ।

उनके समान व्यवहार का तात्पर्य यह भी था कि – 'सर्वभूतात्मभूतता - अर्थात् प्राणीमात्र को आत्मीय भाव से अंगीकार करना । प्रत्येक व्यक्ति आत्मा से परमात्मा, जीव से शिव तथा नर से नारायण बनता है अतः प्रत्येक के साथ आत्मवत् व्यवहार करना ही, उनका सामाजिक समन्वयवाद था । साधु + साध्वी, श्रावक + श्राविका यह चतुर्विध संघ ही उनका, समाज था, जातिवाद का दम्भ उनसे कोसों दूर था । उनके मत से कोई भी मनुष्य जन्म से ब्राह्मण, शूद्र या वैश्य नहीं होता वरन् –

"कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।"

अर्थात् मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है ।

आज जो समाजवादी विचारधारा पोषण पा रही है, वह भगवान महावीर के समता सिद्धान्त पर ही आधारित है ।

सामाजिक समन्वय तभी संभव है जब संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत क्षेत्र में - आचार में, व्यवहार में और विचार में समन्वित हो ।

आचरण में समन्वय -

'आ' अर्थात् आचार - मर्यादा तथा 'चरण' अर्थात् 'चलना' । मर्यादा में चलना ही आचरण है । जैसा औरों का आचरण हम अपने प्रति चाहते हैं वैसा ही आचरण हमें औरों के साथ करना चाहिये । "मित्ती मे सव्वभूएसु, वैरं मज्झं न केणइ" – सभी से मित्रता हो, किसी से बैर नहीं । यह उनके आचरण समन्वयवाद की मंजिल थी । इस मंजिल तक पहुँचने के लिए उन्होंने पंच अणुव्रत - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह-परिमाण-व्रतः, दशधर्म - क्षमा, मार्दव, अर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अविंचन एवं ब्रह्मचर्य तथा १२ अनुप्रेक्षाएं – अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ तथा धर्म - का प्रतिपादन किया । यह वह समन्वित आचार संहिता थी जो शांति, कल्याण और मुक्ति का शाश्वत मार्ग थी - है - और रहेगी ।

'जीओ और जीने दो' – कोई दुःख नहीं चाहता अतः किसी को दुःख मत दो - यह उनके आचरण समन्वयवाद का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है ।

'उड्ढं अहे य तिरिय, जे केइ तस थावरा ।
सव्वत्थं विरइं विज्जा, संति निवाण माहियं ।।

अर्थात्, उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक में जितने भी त्रस और स्थावर जीव हैं, उनके प्राणों का विनाश करने से दूर रहना चाहिये । वैर से विरक्ति ही शांति है और यह शांति ही निर्वाण की ओर ले जाने वाली है ।

'सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुःख पडिकूला, अप्पियवहा,
पिय जीविणो, जीविउ कामा, सव्वेसिं जीवियं पियं ।'

अर्थात् सभी प्राणी को अपना जीवन प्रिय है, सभी सुखसाता चाहते हैं, दुःख को सर्वथा प्रतिकूल मानते हैं, अपने वध को अप्रिय मानते हैं तथा जीवन को अति प्रिय मानते हैं । अतः जब किसी को भी मरना इष्ट नहीं तो दूसरों को मारने का क्या अधिकार है ?

यही अहिंसा है । कहा गया है कि – 'यस्मिन् कर्मणि प्राणिना प्राणानां नाशं न क्रियते, तत् कर्म एव अहिंसा इति कथ्यते ।' किन्तु महावीर की अहिंसा तो इससे भी कहीं ऊपर बहुत ऊपर थी । मन से, वचन से और कर्म से किसी की हिंसा न करना, ऐसा करने का विचार भी मन में न लाना तथा मन - वचन - कर्म से किसी को भी मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा न पहुँचाना ही अहिंसा है ।

भगवान महावीर के अनुसार एक सच्चा अहिंसक वही है जो बाहरी भेदों को पाटकर आन्तरिक समानता को देखे । शरीर, इन्द्रिय, रूप, रंग, जाति, धन, धर्म आदि बाहरी भेदों को देखकर आन्तरिक और स्वरूप गत समानता को भुलाने

डॉ. श्रीमती कोकिला भारतीय
एम.ए., पी.एच.डी.

सिद्धहस्त लेखक तथा अन्वेषणात्मक विधि से परिपक्व । एक शोध प्रबंध का प्रकाशन । कई पत्र पत्रिकाओं में विविध विधाओं पर रचनाओं का समावेश । कुशल वक्ता तथा शब्द भंडार की विशिष्टता ।
संपर्क : ४७, सागरमल मार्ग, खाचरौद, (जि. उज्जैन, म. प्र.)

दो मुंह बातें मत करो, बहुत बडा यह पाप ।
जयन्तसेन निश्चल मति, करती जीवन साफ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाला अहिंसक हो ही नहीं सकता । जो आंतरिक समानता को नहीं देखता वह अपने को ऊँचा व दूसरे को नीचा या दूसरे को ऊँचा तथा स्वयं को नीचा समझता है । यही अहम् या हीन भाव ही विषमता पैदा करता है और जहाँ विषमता है या विषमता का भाव है वहाँ हिंसा को कोई रोक नहीं सकता ।

अहिंसा को साधने के लिए उन्होंने सम-भाव की साधना आवश्यक बताया । एकाग्रता के अभ्यास के द्वारा मन को वश में करके सिद्धांतगत स्वरूपगत मानस-स्तरीय समता को साधा जा सकता है । समता अर्थात् सम-भाव, न राग न द्वेष, न आकर्षण न विकर्षण, न इधर झुकावा न उधर । - यही तो समन्वय है और जिस व्यक्ति या समाज का अन्तःकरण समता से स्नात हो जाता है उसके व्यवहार में विषमता नहीं होती ।

इतना ही नहीं उन्होंने इस अहिंसा अणुव्रत के पालन में आने वाले अतिचारों जैसे - परिजनों व पशुओं के प्रति क्रूरता बरतना, उनका वध - बन्धन करना, अतिभार लादना, चाबुक-बेंत आदि से पीटना, भूखे रखना, नाक-कान छेदना आदि अनेकों अतिचारों से यथासंभव बचे रहने के लिए कहा ।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा विश्व कल्याण के लिए अद्वितीय थाती है, सुख शांति की जननी है तथा शस्त्रास्त्रों की होड़ में लगे विश्व की रक्षा करने वाली अलौकिक शक्ति है ।

व्यवहार में समन्वयवाद

इस प्रकार आचरण के लिए अहिंसा को और अहिंसा के लिए समता को साधना ही व्यक्तिगत आचरण का समन्वयवाद था । व्यवहार में इस साधना के लिए २ बातें अनिवार्य बताई-

(१) साधन शुद्धि का विवेक

(२) व्यक्तिगत जीवन में संयम का अभ्यास

साध्य से साधन की महत्ता कम नहीं अतः पवित्र साध्य की साधना के लिए साधनों की पवित्रता भी नितान्त आवश्यक है । महावीर की यही साधन शुचिता महात्मा गान्धी के मानस पर विद्यमान थी जिसके बूते पर - सत्याग्रह व अहिंसक आन्दोलन के जरिये ब्रिटिश जैसी साम्राज्यवादी कौम ने भी हिन्दुस्तान को आजादी दी ।

व्यवहारिक जीवन में भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत जीवन में संयम का अभ्यास आवश्यक है ऐसा उनका अनुभूत प्रयोग एवं मत था । मन, वचन एवं काया से कर्म से बुराइयों को रोकना ही अहिंसा है - धर्म है । वाणी पर संयम, प्रवृत्ति पर संयम तथा शरीर पर संयम के द्वारा व्यक्तिगत जीवन में, सामाजिक जीवन में तथा आध्यात्मिक उपलब्धि, मुक्तिमंजिल की ओर आसानी से बढ़ा जा सकता है ।

वाणी पर संयम –

भगवान महावीर की अहिंसा सर्व जीव हिताय थी, एक समन्वित आचार संहिता थी तथा विश्वमैत्री और विश्वशांति की रूप रेखा थी वहीं धर्म निरपेक्षता इस अहिंसा का आधार थी तथा सत्यदर्शन इसका सम्बल ।

सत्य याने 'अस्ति' - जो है, उसको बताना पर वह हितकारी हो तथा दूसरों को भी प्रिय हो । गीता में भी कहा गया है –

"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्,

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्चते ।"

अर्थात् ऐसा वाक्य बोलना चाहिये जो दूसरों के चित्त में उद्वेग उत्पन्न न करें, जो सत्य, प्रिय व हितकर हो तथा जो वेद शास्त्रों के अनुकूल हो । यही वाणी का तप है । यही बात भगवान महावीर ने भी कही –

तहेव काणं काणोक्ति, पंडगं पंडगेति वा,

वाहिय वा वि रोगीत्ति, तेणं चोरेत्ति नो' वए ।

(दशवैकालिक सूत्र)

अर्थात् काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी तथा चोर को चोर न कहें । किसी को पीड़ा पहुँचाना हिंसा है इसीलिए भ. महावीर ने वाणी-संयम पर बल दिया ।

सत्य किसी के द्वारा अधिकृत नहीं, उसकी अभिव्यक्ति पर सभी का अधिकार है । उन्होंने कहा कि –

"सच्चं जसस्तं मूलं, सच्चं विस्सास कारणं,

परमं सच्चं सग्ग-द्वारं, सच्चं सिद्दीइ सोपाणं ।।"

अर्थात् सत्य निश्चय ही यश प्राप्ति का मूल है, सत्य ही विश्वास उत्पन्न कराने में कारण भूत तत्त्व है, सत्य ही स्वर्ग का श्रेष्ठ द्वार है तथा सत्य ही मोक्ष प्राप्ति के लिए सुन्दर सीढ़ियों के समान है ।

जन्म से ही आत्मा की प्रवृत्ति सत्य की होती है - बच्चा झूठ बोलना नहीं जानता-उसे झूठ बोलना सिखाया जाता है । ज्यों ज्यों उम्र और दायित्व बढ़ते हैं - कमजोरियाँ बढ़ती है वैसे-वैसे असत्य की ओर उन्मुखता बढ़ती है पर असत्य भाषण भला कौन पसन्द करता है ? कागज की फूलों की सच्चाई कहीं छुपती भी है ?

जो कठिनाइयाँ सत्य भाषण में आती है वे हमारी आत्मा की बुराइयाँ है और सत्य भाषण से ही वे समाप्त भी होंगी । भ. महावीर ने कहा कि यदि मनुष्य सदैव सत्य ही बोलने का संकल्प ले ले तो वह स्वयं भी सुखी रह सकता है तथा सबको भी सुखी बना सकता है । वास्तव में यह छल प्रपंचवाला संसार यदि महावीर के सत्य को अपनाले तो विश्वशांति और कल्याण की दिशा में उन्मुख हो सकता है ।

परन्तु सत्य की दिशा में भी समन्वय की ओर कदम बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, –

"महुत दुक्खा उद्धवंति कंटया,

अओमया ते वि त ओ सुउद्धरा ।

वाया दुरुत्ताणि दुरूद्धराणि,

वेराणु बन्धीणि महब्भयाणि ।

काँटा या कील चुभ जाने पर कुछ देर ही दुःख पहुँचाती है किन्तु

छुरा भोंकना पीठ में, कायर का है काम ।
जयन्तसेन पराक्रमी स्पष्ट वदत विश्राम ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कठोर वाणी की चोंट चिरकाल तक कष्ट पहुँचाते हुए बैर को उपजाकर विनाश की ओर ले जाती है - अतः वाणी पर सदैव संयम रखना चाहिये । यह उनका सापेक्षवाद एवं आचरण और व्यवहार के समन्वय वाद का उत्कृष्ट उदाहरण था । वे सत्याग्रही होने की अपेक्षा सत्यग्रही होना आवश्यक और अच्छा समझते थे । बोली का घाव किसी को न लगे यही वाणी का संयम है । उन्होंने कहा,

'अप्पणट्ठा, परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसमं न मूसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ।'

(दशवैकालिक ६/११)

अपने या दूसरों के लिए क्रोध या भय से पीड़ा पहुँचाने वाला सत्य और असत्य न बोले, न दूसरों से बुलवाएं । वाणी सत्यमय हो, उसमें कष्ट व कटुता न हो - इसका ध्यान प्रत्येक व्यक्ति को रखना चाहिये ।

सत्य अणुव्रत के पालन के लिए अतिचारों को रखने की बात उन्होंने कही जैसे - मिथ्या उपदेश, कूटलेख तैयार करना, न्यूनाधिक नापतोल करना, व्यंग करना, निन्दा करना, वचन देकर' भूलजाना या पालन में ढिलाई करना आदि ।

प्रवृत्ति पर संयम

संग्रह की प्रवृत्ति, तस्करी की प्रवृत्ति, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी और भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति ने आज मानव को आतंकित कर रखा है तथा दैनिक जीवन को अशान्त एवं अनाचार पूर्ण बना दिया है । महावीर के आचार समन्वयवाद ने जहाँ सत्य और अहिंसा के द्वारा विश्व शांति और मैत्री का मार्ग प्रशस्त किया वहीं अस्तेय व अपरिग्रह अणुव्रत के द्वारा प्रवृत्ति पर संयम की राह दिखाई तथा व्यावहारिक जीवन को आसान बनाया ।

'चित्तमंतम चित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं ।
दंत सोहण मित्रं वि, उग्ग हंसि अजाइया ।
तं अप्पणा न गिण्हंति, नौ वि गिव्हावए परं,
अन्नं वा गिण्हमाणं वि, नाणु जाणन्ति संजया ।

अर्थात्, कोई भी वस्तु चाहे सजीव हो या निर्जीव, कम या ज्यादा - यहां तक कि दांत कुतरने की सलाई के समान ही छोटी क्यों न हो; उसे बिना उसके स्वामी से पूछे नहीं उठाना चाहिये, यही नहीं वरन् न दूसरों से उठवाए और न ही उठाने वाले का अनुमोदन ही करे । इस प्रवृत्ति को रोकना अत्यावश्यक है अन्यथा यह बहुत कष्टकर होती है । क्योंकि बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करना चोरी है, दूसरे की वस्तु को पाने की चाह मात्र चोरी है । इस अणुव्रत के भी कई अतिचार बताये हैं जैसे - दूसरों की वस्तु का अभिलाषी होना, दूसरों को इसके लिए उकसाना, चोरी के साधन रूप उपकरण या औजार बनाना या बनवाना, चोरी का माल खरीदना या बेचना, राज्य के नियमों का उल्लंघन करना, वाजिब से ज्यादा मुनाफा कमाना, चोरी छिपे धन संग्रह का प्रयत्न करना आदि ।

यदि वर्तमान में इन प्रवृत्तियों पर अंकुश लग जाय तो अनेकानेक समस्याओं का समाधान स्वयमेव ही हो जायगा तथा एक आसान अर्थव्यवस्था का अवतरण होगा ।

प्रवृत्ति पर संयम का दूसरा व्यवहारिक हिस्सा परिग्रह परिणाम व्रत है । आज का मानव पार्थिव एषणाओं तथा भौतिक पिपासाओं की मृग मरीचिका के पीछे बेतहाशा दौड़ रहा है उसे नहीं पता इस अविश्रान्त दौड़ का लक्ष्यबिन्दु क्या है ? क्या मंजिल है ? – इस बेचैनी का एक मात्र कारण है - संग्रह वृत्ति – परिग्रह वृत्ति । परिग्रह सिर्फ भौतिक वस्तुओं का ही नहीं होता – किसी भी पदार्थ के प्रति ममत्व या आसक्ति रखना ही परिग्रह है । भगवान महावीर ने कहा कि, –

"चित्तमंत चित्तवा परिगिज्झ किसामवि ।
अन्नं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खाण मुच्चइ ।।

अर्थात् जो सजीव और निर्जीव वस्तुओं का संग्रह करता है और दूसरों से करवाता है या करने की सम्मति देता है वह दुःखों से मुक्त नहीं होता ।

यहाँ भी समन्वयवाद की ओर कदम बढ़ाते हुए उन्होंने सांसारिक जीवन में यथासंभव संयम का पथ प्रदर्शित किया । उन्होंने कहा कि व्यक्ति आवश्यकता से अधिक संग्रह न करे । परिग्रह परिणाम के द्वारा व्यक्ति तृष्णा और लोभ पर अंकुश लगाकर स्वयं को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा उठा सकता है तथा सुख और शांति का जीवन जी सकता है । भगवान महावीर ने सबके कल्याण हेतु व्यक्ति की दृष्टि से, समाज की दृष्टि से तथा आध्यात्मिक दृष्टि से अपरिग्रह को आवश्यक बताया ।

शरीर पर संयम –

इन्द्रियों को वश में करके संयम और तप के द्वारा ही आत्मा को निखारा जा सकता है । भगवान महावीर ने कहा कि –

'न व मंडिएण समणो, न ओकारेण बंभणो ।
न मुनीवण्ण वासेण, कुस चीरेग ण तावसो ।'

अर्थात् सिर मुड़ा लेने से श्रमण ओम् कहने से ब्राह्मण, निर्जन वन में रहने से मात्र से ही मुनि और कुश के वस्त्र पहनने से ही कोई तपस्वी नहीं होता वरन् –

'समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो
नाणेण उ मुनी होइ, तवेण होइ तावसो ।'

अर्थात् समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान की उपासना से मुनि व तप से तपस्वी बनता है ।

अनैतिकता और वासना के दावानल में झुलसते संसार को आज भगवान महावीर का ब्रह्मचर्य व्रत शीतलता प्रदान कर सकता है । उन्होंने कहा कि, " बंभचेर उत्तम तप-नियम-नाण-दंसण,

चारित्र - सन्मत - विणयमूलं ।।"

अर्थात् ब्रह्मचर्य उत्तम तप,

दोष किसी के क्यों ग्रहे, रख गुण ग्राहक भाव ।
जयन्तसेन गुणी बनो, निश्चल नित्य स्वभाव ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, संयंम और विनय का मूल है - अतः जो इसका पालन करते हैं देवता भी उनके आगे नतमस्तक हो जाते हैं ।

यहाँ भी समन्वय की ओर उन्मुख होते हुए भी उन्होंने गृहस्थ के लिए स्व-दारा सन्तोष तथा अपनी पत्नी के प्रति ईमानदारी की बात कही । स्वदारासन्तोष जहाँ समाज के शील और शिष्टाचार की रक्षा करता है वहीं सामाजिक सुव्यवस्था बनाए रखता है, मनुष्य को पशु होने से बचाता है साथ ही विषय भोगों के प्रति अनासक्ति से स्वास्थ्य की भी रक्षा होती है ।

वास्तव में यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, शाश्वत है, जिनावदेशित है । महावीर के व्यक्तित्व का सर्व प्रधान गुण ही उनका अनन्तवीर्य होना तथा मन-वचन-कर्म से संयमित होना ही था । आचरण के समन्वय का यह अनुपम उदाहरण है । विश्व कल्याण के लिए, नैतिकता के निखार के लिए यह अमृत तुल्य है ।

विचार के द्वारा समन्वयवाद

भगवान महावीर ने अहिंसा, संयम व तप के द्वारा जहां आचरण को, अपरिग्रह के द्वारा व्यवहार को समन्वित किया वहीं चिन्तन व दर्शन के क्षेत्र में समन्वय की प्रतिष्ठा के लिए अनेकान्त का दीप जलाया ।

अनेकान्त का अर्थ है - अनेक अन्त - वस्तुका सर्वतोन्मुखी विचार । जगत का प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणात्मक है । जल, मनुष्य की प्यास बुझाता है पर हैजे के रोगी के लिये विषतल्य है; दूध स्वास्थ्य के लिए अमृत है पर अतिसार रोगी के लिए मृत्यु का कारण । राम दशरथ के पुत्र थे, लव कुश के पिता व सीता के पति । अर्थात् एक में अनेक आभास । यह बोध ही धर्म व दर्शन का उद्देश्य है । और यही महावीर का अनेकान्तवाद । मिट्टी का एक कण अनन्त स्वभावों का मिश्रण है । मिट्टी से ही तीखी, कड़वी, मीठी अनेक प्रकार की वस्तुएं उत्पन्न होती हैं - वास्तव में मिट्टी तो एक ही है पर बीज अपने स्वभावानुकूल अभीष्ट तत्त्वों को खींच लेते हैं । ऐसी स्थिति में मिट्टी के कणों को कडुआ, मीठा या तीखा कहना अज्ञानता है । तात्पर्य यह कि प्रत्येक वस्तु के अनेक स्वभाव होते हैं अतः सभी स्वभावों कोजानकर ही वस्तु का पूरा बोध हो सकता है । इस प्रकार सब तत्त्वों में समन्वय की खोज करना, व भिन्नता में अभिन्नता का दिग्दर्शन करना ही अनेकान्त है।

वर्त्तमान समाज में पारस्परिक झगड़ों का एक महत्त्वपूर्ण व मूल कारण यह भी रहा है कि दूसरों के सही दृष्टिकोण का भी अनादर करना । अनेकान्तवाद समस्त मतवादों के समन्वय का मध्यम मार्ग है क्योंकि वह सत्य से परिचित है । अनेकान्तवाद माननीय विचार धारा का एक वैज्ञानिक उन्मेष है जो आग्रह और आतंक के इस वातावरण में भी तत्त्व को, सत्य को समझने की सूक्ष्म दृष्टि देता है । अनेकान्त वाद जहाँ दार्शनिक तथ्यों को लेकर होने वाले वाद-विवादो और संघर्षो का अंत करने में समर्थ है वहीं आचरण और व्यवहार को भी सरल व सरस बनाने में कम सफल नहीं ।

वर्त्तमान समय में विश्व की बहुत सारी समस्याओं का समाधान महावीर के समन्वयवाद से - अनेकान्तवाद से हो सकता है - कि कौन किस अपेक्षा से बातकर रहा है – यह सम्यक् ज्ञान सम्यक् समाधान बन सकता है । इतिहास साक्षी है, एकान्तवाद ने हिंसा को प्रश्रय दिया है अशांति को - आतंक को प्रश्रय दिया है वहीं अनेकान्त ने शान्ति को, कल्याण को तथा अहिंसा को जन्म दिया है । आग्रह, पक्षपात और एकान्त द्रष्टिकोणों के आधार पर सामूहिक जीवन कभी शान्त नहीं हो सकता, सुखी नहीं हो सकता ।

आज जो - प्रत्येक परिवार में, समाज में, धर्मों में, संस्थानों में राष्ट्र व अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रों में - संघर्ष है, मनोमालिन्य है, कटुता व तनावपूर्ण व्यवहार है - वे सारे असहिष्णुता-प्रसूत है । उनकी एकही कमी है - समन्वय का अभाव । भगवान महावीर का समन्वयवाद वह कांक्रीट है जो समस्त टुकड़ों को जोड़ सकता है, वह शीतल जल है तो अशांति के दावानल को शांत कर सकता है, वह सेतुबन्ध है जो अनेकानेक किनारों को-तटों को जोड़ सकता है, समीकरण का वह सूत्र है जो विश्वकी समस्त समस्याओं का समाधान कर विश्व को शांति और कल्याण के प्रवास की दिशा प्रदान कर सकता है ।

मधुकर-मौक्तिक

हमारे अपने जीवन में दर्पण का बड़ा महत्त्व है । दर्पण में हम अपनी मुखछवि देखते हैं । चेहरे पर यदि कोई गन्दगी हो, तो दर्पण में वह दिखायी देती है । दर्पण में देख कर हम अपने मुँह को साफ रख सकते हैं । अरिहंत परमात्मारुपी दर्पण हमारे सामने है । इस आईने में हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बित हो सकता है । इस आईने में देखकर हमारे जीवन की मलिनता हमें दूर कर लेनी चाहिये । पर हम इस आईन में देखते ही नहीं हैं । आत्म-निरीक्षण करने की हमें आदत नहीं है । आईना हमारे सामने है, पर हम आईने में देखते नहीं हैं । इसमें आईने का क्या दोष है ? आईने का कोई दोष नहीं, दोष हमारा स्वयं का है । हम देखकर भी अन्धे बनते हैं ।

– जैनाचार्य श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर'

जन्म मरण का चक्र यह, चलता जग में जान ।
जयन्तसेन प्रेम सुधा, अमर करे नित प्राण ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org